विकासवाद : एक दार्शनिक अध्ययन

(सांख्य, श्री अरबिन्द, लामार्क, डार्विन, स्पेन्सर तथा बर्गसाँ के विशेष संदर्भ में)

शोध प्रारूप

दर्शनशास्त्र विभाग

(मानविकी संकाय)

राँची विश्वविद्यालय, राँची

में पीएच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रस्ताव

2024

शोध निर्देशक

Pradip K. Gupta 03/09/24.

डॉ० प्रदीप कुमार गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
दर्शनशास्त्र विभाग,
गोस्सनर कॉलेज, राँची।

शोधार्थी

Ritu Kumari

रितु कुमारी
दर्शनशास्त्र विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

विकासवाद : एक दार्शनिक अध्ययन

(सांख्य, श्री अरविन्द, लामार्क, डार्विन, स्पेन्सर तथा बर्गसाँ के विशेष संदर्भ में)

सामान्यतः लोग कहते हैं, ''संसार के हर शय का इतना ही फंसाना है, एक धुंध से आना है, एक धुंध में जाना है।'' परन्तु दार्शनिक उन आम लोगों में से नहीं हैं जो किसी भी बात को यूँ ही स्वीकार कर लें, वे ऐसे जुझारू तथा खोजी प्रवृत्ति के विरले मनुष्य हैं, जो उस धुंध में घुसने का जोखिम उठाते हैं और अपने–अपने ढंग से जीवन एवं जगत के रहस्यों को अनावृत्त करने का प्रयास करते हैं तथा नए–नए तथ्यों से संसार को आश्चर्यचकित करते हैं। यही दार्शनिक लोगों की सोच को नवीन दिशा देते हैं और इसी क्रम में किसी कॉपरनिकस का जन्म होता है कोई ब्रूनो, तो कोई गैलिलियो संसार को नवीन दृष्टि देते हैं; कहीं सुकरात जन्म लेता है जो जगत को सही और नई राह दिखलाता है। ऐसे ही दार्शनिकों में से पूरब तथा पश्चिम के कुछ दार्शनिकों ने विकासवाद को जन्म दिया। परन्तु विकासवाद को विधिवत् जन्म देने वाले, उसकी अपने–अपने ढंग से व्याख्या करने वाले भी संसार में कई दार्शनिक हुए। पूरब में महर्षि कपिल, महर्षि अरबिन्द तो पश्चिम में लामार्क, डार्विन, स्पेन्सर तथा बर्गसाँ आदि अनेक दार्शनिक हुए। मैंने इन्हीं दार्शनिकों के सृष्टि संबंधी विचारों को अपने शोध का विषय बनाया है।

1. <u>परिचय (Introduction)</u> :–

विश्व की रचना कैसे हुई यह दर्शन के साथ–साथ विज्ञान का भी महत्वपूर्ण विषय रहा है। विश्व की उत्पत्ति एवं स्थिति के विषय में भारतीय परिप्रेक्ष्य में सांख्य और महर्षि अरविन्द को छोड़कर सब ने सृष्टिवाद को स्वीकार किया है तथा वहीं दूसरी ओर पश्चिमी परिप्रेक्ष्य में अधिकतर विचारक विकासवाद को स्वीकार करते हैं।

एक ओर सृष्टिवाद है जो यह मानता है कि विश्व की उत्पत्ति ईश्वर ने एकाएक कर दी है एवं वर्तमान में विश्व की जो व्यवस्था दिखाई पड़ती है, ईश्वर ने ठीक वैसी स्थिति में इसको उत्पन्न किया है। चूँकि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं पूर्ण है, इसलिए वह स्वयं विश्व का निमित्त और उपादान दोनों कारण है। विश्व के सभी पदार्थों की सृष्टि ईश्वर ने स्वयं की है, इसलिए इनमें कोई मौलिक भेद नहीं समझा जाता है। विश्व जैसी स्थिति में आज है, वैसी स्थिति में एकाएक उत्पन्न हुई है। अतः विश्व अपरिवर्तनशील है। दूसरी ओर विकासवाद है जो यह स्वीकार करता है कि विश्व क्रमिक विकास का प्रतिफलन है। परिवर्तन की प्रक्रिया ही विकास की प्रक्रिया है, परिवर्तन होने के फलस्वरुप विश्व के पदार्थों में सामान्य लक्षण दिखाई पड़ते हैं। विश्व की प्रकृति ही विकसित या परिवर्तित होना है। विकासवाद पर अनेक विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, परन्तु

विकासवाद को पश्चिम में जन्म देने एवं प्रकाश में लाने का मुख्य श्रेय जीन–बैप्टिस्ट लामार्क तथा चार्ल्स डार्विन को जाता है।

डार्विन ने सर्वप्रथम जैवी–विकास की वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अधिकतम प्रमाणों के साथ विस्तारपूर्वक व्याख्या की, जिसके फलस्वरुप इस सिद्धान्त को अन्य वैज्ञानिकों द्वारा अस्वीकार करना कठिन हो गया।

डार्विन एक पाश्चात्य समकालीन विचारक हैं, जिन्होंने बाईस वर्ष की आयु में जहाज पर सम्पूर्ण संसार की यात्रा करते हुए जीवों के विकासवाद के लिए अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। डार्विन ने विकासवाद की व्याख्या 'ऑन दी ऑरिजन ऑफ स्पिसिज' में की है। इसमें इन्होंने जीवों और जीव योनियों की क्रमिक उत्पत्ति की व्याख्या प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) सिद्धान्त के आधार पर की है। वे मानते हैं कि कुछ–न–कुछ कारणवश ही प्राकृतिक नियम का विकास होता है। विकास प्रक्रिया इन्हीं नियमों के द्वारा संचालित, नियंत्रित और निर्देशित होती है, जहाँ बुद्धि या ईश्वरीय नियम की आवश्यकता नहीं होती है। प्रकृति से डार्विन का तात्पर्य देशकाल में व्याप्त सभी सजीव और निर्जीव पदार्थों की समष्टि से है।

<u>डार्विन के अनुसार विकास क्रम के चार नियम हैं</u> –

1. जीवन संग्राम (Struggle for Existence)
2. योग्यतम की जीवन रक्षा या प्राकृतिक निर्वाचन (Survival of the fittest or Natural Selection)
3. शारीरिक परिवर्तन (Variations) और
4. अनुवांशिकता (Heredity)

हम इन नियमों के आधार पर प्रकृति के प्राणियों का निरीक्षण या प्रयोग करते हैं, तो वह सत्य सिद्ध होता है।

डार्विन से पूर्व लामार्क ने भी क्रम विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, परन्तु लामार्क डार्विन के समान ख्याति प्राप्त नहीं कर पाए। लामार्क ने अपनी पुस्तक 'जूलॉजिकल फिलॉसफी' (1809) में जीवों के क्रम विकास के बारे में व्याख्या करते हैं और कहते हैं कि सभी प्राणियों का क्रमिक विकास कुछ सरल प्राणियों से हुआ है। लामार्क के अनुसार प्राणियों का विकास कुछ नियमानुसार हुआ है, जिसमें पहला नियम है कि जीव/मनुष्य की कुछ प्रबल इच्छाएँ होती हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए उनमें नए अंगों की उत्पत्ति होती है और दूसरा यह कि नई इच्छाओं की पूर्ति के लिए जीव नये तरह के कार्य एवं नई आदतों को अपनाते हैं। तीसरा नियम उपयोग

और अनुप्रयोग है, जिसके अन्तर्गत जीवों के अंग में परिवर्तन होते हैं, जिसके फलस्वरुप जो अंग उपयोग में आते हैं वे प्रबल होते हैं और जो अनुपयोगी होते हैं वो सबल होते जाते हैं। विकास का चौथा नियम है कि प्राणियों में परिवर्तन से उत्पन्न अंगों को अनुवांशिकता के माध्यम से आने वाले पीढ़ियों में संचारित करना। लामार्क का क्रम–विकासवाद सिद्धान्त इन्हीं चार नियमों के अनुसार प्रतिपादित है।

हरबर्ट स्पेन्सर, डार्विन के क्रमिक–विकासवाद से बहुत प्रभावित हुए इसलिए उन्होंने डार्विन के क्रमिक–विकासवाद के प्रमुख नियमों का प्रयोग अपने तत्वमीमांसा तथा समाज दर्शन में किया। इतना ही नहीं, इन्होंने मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के प्रतिपादन में भी इसका प्रयोग किया। उनकी यह धारणा थी कि सभी विज्ञानों का समन्वय क्रमिक –विकासवाद पर सम्भव है।

स्पेन्सर ने डार्विन के क्रम–विकास सिद्धान्त के आधार पर मूल्यों एवं प्रत्ययों का अपने समाज–दर्शन में प्रयोग किया और कहा कि मानव समाज इसके आधार पर एक आंगिक संरचना कहा जा सकता है। किसी भी प्राणी की वृद्धि की तरह ही समाज की भी वृद्धि होती है। समाज में व्यक्तियों का जन्म होता है एवं मृत्यु होती है, परन्तु समाज स्थायी रहता है, इसी प्रकार समाज के व्यक्तियों की तुलना एक प्राणी के कोषों के साथ की जा सकती है। स्पेन्सर के अनुसार सामाजिक प्रक्रिया जैविक प्रक्रियाओं की तरह ही पूरी होती है।

एक ओर जहाँ डार्विन ने जैव–विकास के आधार पर विश्व के विकास को बतलाया है, वहीं लामार्क ने चार नियमों के द्वारा यह बतलाया है कि सभी प्राणियों का क्रम–विकास होता है जो अनुप्रयोग एवं उपयोग प्रक्रिया द्वारा संभव होता है। वहीं स्पेन्सर ने समाज की संरचना क्रमिक–विकास के आधार पर स्वीकार किया है।

बर्गसाँ ने सृजनात्मक क्रम–विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए अपनी पुस्तक 'ला एवोल्युशन क्रिएटिव' में बताया है कि परम तत्व में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। बर्गसाँ के अनुसार जीवन शक्ति कहने का तात्पर्य 'परम तत्व' है। जीवन शक्ति विश्व में सभी प्रकार के परिवर्तन का स्रोत है, जिसके अनुसार प्रकृति के हर पहलू में जीवन शक्ति के निर्देशों के कारण विकास हो रहा है। बर्गसाँ के अनुसार जीवन शक्ति चरम सत्ता है। यह क्रमिक–विकास का उद्गम स्थल है एवं जीवन शक्ति ही क्रमिक–विकास है। जीवन–शक्ति और परमेश्वर दोनों परम तत्व के अलग–अलग नाम हैं। क्रमिक–विकास का प्रारंभ इस चरम सत्ता से होता है, जैव शक्ति का विकास परमेश्वर से और नवीन वस्तुओं का सृजन क्रमिक–विकास के माध्यम से होता है। विश्व के सभी पदार्थों, प्राणों एवं चेतनाओं की सृष्टि परमेश्वर या जीवन शक्ति से हुई है।

विकासवाद को भारतीय दर्शन में सर्वप्रथम सांख्य दर्शन स्वीकार करता है। सांख्य दर्शन द्वैतवादी है क्योंकि इसने दो मौलिक मूल तत्व 'प्रकृति' और 'पुरूष' को स्वीकार किया है। इनके मेल को विकास की प्रक्रिया के लिए परमावश्यक माना गया है, जिसमें प्रकृति अचेतन और पुरूष चेतन है। चेतन और अचेतन के संयोग होने के फलस्वरुप ही प्रकृति की साम्यावस्था टूटती है, प्रकृति के साम्यावस्था में तीन गुण सत्व, राजस, तमस होती जो पुरूष के निकटता से भंग होती, जिसके परिणाम स्वरुप विकास की प्रक्रिया आरम्भ होती है, जिससे विभिन्न तत्वों की क्रमशः उत्पत्ति होती है।

विकास के दो रूप होते हैं – (1) बुद्धि सर्ग और (2) तन्मात्रसर्ग। पहली अवस्था में बुद्धि, अहंकार और एकादश इन्द्रियों का तथा दूसरी अवस्था में पंचतन्मात्राओं एवं पंचमहाभूतों और उनके विकारों का प्रादुर्भाव होता है। विकासवाद भिन्न–भिन्न तत्वों का खेल है, जिसमें प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ, पंच महाभूत, पुरूष, कुल 25 तत्व हैं। ये विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। पुरूषों के भोग तथा मोक्ष के लिए प्रकृति विकास करती है।

समकालीन भारतीय दार्शनिक श्री अरबिन्द के अनुसार विकास का अर्थ है – 'सृष्टि के उत्थान एवं अवतरण की प्रक्रिया'। श्री अरबिन्द सृष्टि संबंधी विचार को द्विगुणात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक ओर यह परात्म का जगत के रुपों में अवतरण (Involution) है तथा दूसरी ओर जगत के रूपों का उच्चतर रूपों में उत्थान या विकास (Evolution) है। इस प्रकार श्री अरबिन्द की दृष्टि में सृष्टि 'अवतरण' तथा 'उत्थान' की प्रक्रिया है। इस उत्थान की प्रक्रिया को ही श्री अरबिन्द विकास की प्रक्रिया और अवतरण को अन्तर्वलन की प्रक्रिया कहते हैं। विकास का अर्थ ''निम्नतर का उच्चतर में विकसित होना'' है।

सत्ता के आठों स्तरों के क्रम में दोनों प्रक्रियायें चलती है जो निम्न प्रकार से है – जड़तत्व, जीवन (प्राण) मन, मानस, अतिमानस, आनन्द, चित् शक्ति एवं शुद्ध सत्। ये आठों स्तर एक–दूसरे की ओर अग्रसर रूप में है, जिसके फलस्वरुप विकास होता है। श्री अरबिन्द ने बताया कि विकास की प्रक्रिया में तीन प्रक्रियाएँ समाविष्ट हैं – विस्तारण (Widening), उच्चतत्व की ओर उन्मुखता (Heightening) तथा पूर्णीकरण (Integration) जो सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया का आधार है।

2. शोध विषय की अद्यतन स्थिति (State of Art) :–

विश्व की उत्पत्ति एवं प्रलय के विषय में सभी विचारक अपने–अपने विचारों को, अपने द्वारा दिए गए सिद्धान्तों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं तथा अपने द्वारा दिए गए सिद्धान्तों के आधार पर विश्व की संरचना की व्याख्या करते हैं। डार्विन ने बताया है कि विश्व क्रमिक विकास का प्रतिफलन है जिसमें वे जैव–विकास सिद्धान्त को (Theory of Biological Evolution) प्राकृतिक चुनाव के आधार पर स्वीकार करते हैं।

लामार्क ने चार नियमों के आधार पर उपयोग–अनुपयोग के द्वारा विश्व की व्याख्या की है।

स्पेन्सर ने क्रम विकास की प्रक्रिया को स्वीकार किया है। इनके अनुसार जिस प्रकार एक पौधे में सभी कोशिकायें उसके विकास में सहायक होती हैं, ठीक उसी प्रकार व्यक्तियों से समाज का विकास होता है।

बर्गसाँ ने सृजनात्मक विकास को मानते हुए बताया है कि विश्व का परम तत्व ही प्रारम्भ बिन्दु है। इसके भिन्न–भिन्न रूप हैं, जिन्हें जीवन शक्ति या परमेश्वर कहते हैं, जो नए वस्तु का सृजन करते हैं एवं जिसके फलस्वरुप विश्व का विकास होता है।

सांख्य के अनुसार विश्व का विकास प्रकृति और पुरूष के संयोग से आरम्भ होता है। इस प्रक्रिया में प्रकृति भोग का विषय है। जिसको पुरूष भोगता है और अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को पाने के लिए निरन्तर अपना विकास करता रहता है।

श्री अरबिन्द के अनुसार विश्व की प्रक्रिया द्विगुणात्मक है। यह दोनों ओर से चलती है – एक अवतरण और दूसरा आरोहण। इनके अनुसार सृष्टि अवतरण (Descent) और उत्थान (Ascent) की प्रक्रिया है। श्री अरबिन्द सत्ता के आठों स्तर को बताते हुए कहते हैं कि निम्नतर छोर जो पूर्ण ज्ञान शून्यता से भरा हुआ है तथा उच्चतर छोर जो ईश्वरीय चेतना का अंश है, दोनों के बीच विकास की प्रक्रिया निरंतर चल रही है।

विज्ञान और दर्शन जगत में विश्व की उत्पत्ति या विकास का प्रश्न महत्वपूर्ण रहा है, जिसकी व्याख्या करते हुए सभी विचारकों ने अपने–अपने विचार दिए हैं। अब प्रश्न उठता है कि इसी प्रकार विश्व का विकास हो रहा है या इसमें कोई नई पद्धति या सिद्धांत सहायक है। वर्तमान समय में जो विश्व की स्थिति है, जिस तरह जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, प्राणी उत्पन्न, विकसित एवं नष्ट हो रहे हैं, क्या भविष्य में भी इसी तरह होंगे?

अतः आज के समय में विश्व की व्याख्या के संबंध में विकासवाद का दार्शनिक पक्ष अहम भूमिका निभाता है। विकासवाद से संबंधित दर्शनशास्त्र, मानवविज्ञान, समाजशास्त्र इत्यादि क्षेत्रों के दार्शनिक पक्ष का अध्ययन यहाँ हम करेंगे।

मैं अपने शोध ग्रंथ में विकासवाद से संबंधित दर्शनशास्त्र, मानवविज्ञान, विज्ञान, समाज विज्ञान इत्यादि विचारों के पक्ष एवं प्रतिपक्ष के विभिन्न विचारों का अध्ययन करूँगी।

3. उद्देश्य एवं प्रेरणा (Objective and Motivation) :—

विश्व की उत्पत्ति, सिद्धान्त और विकास ने सदियों से मानव जिज्ञासा को आकर्षित किया है एवं दार्शनिकों के साथ—साथ वैज्ञानिकों और धर्मशास्त्रियों के रहस्यों को जानने के लिए प्रेरित किया है। प्राचीन मिथकों से आधुनिक वैज्ञानिक जाँचों तक, विश्व कैसे अस्तित्व में आया तथा अरबों वर्षों में यह कैसे बदलता गया, यह समझाने के लिए कई दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं।

इनमें से एक दृष्टिकोण विकासवाद है जो यह बताता है कि विश्व क्रमिक विकास का फल है। मेरे शोध का मुख्य उद्देश्य विश्व की विकास प्रक्रिया पर प्रकाश डालना और इसकी विस्तृत विवेचना करना है तथा उस सत्ता या सिद्धान्त की खोज करना है जो स्वयं हमारे समक्ष अस्पष्ट एवं अप्रकाशित होकर भी इस विश्व को सुव्यवस्थित रूप से चला रही है, अर्थात् क्या ये विश्व किसी अदृश्य सत्ता द्वारा निर्मित है या इसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रक्रिया है?

यदि कोई अन्य प्रक्रिया है तो वह क्या है? क्या वो ईश्वरीय प्रक्रिया है या समय के अनुकूल विश्व की स्थिति स्वयं ऐसी होती गई? इसी जिज्ञासा के साथ मैं इस शोध पर कार्य करने के लिए प्रेरित हुई हूँ। इसकी प्रेरणा मुझे संसार के जैविक, वानस्पतिक, प्राणियों में निरन्तर परिवर्तन को देखकर हुआ है। मेरी शोध प्रक्रिया विकासवाद पर आधारित है। इसलिए विकासवाद उपादेयता और यह विश्व की व्याख्या में कितनी महत्वपूर्ण है, इस विषय को केन्द्र में रखते हुए मैं शोध करने जा रही हूँ। चूँकि मैं खुद एक दर्शनशास्त्र की छात्रा हूँ इसलिए मैं विकासवाद के सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए दार्शनिक दृष्टिकोण से इसे और अधिक प्रभावी बनाना चाहती हूँ।

4. अनुसंधान प्रश्नावली (Research Question) :—

- विकासवाद का दार्शनिक पक्ष क्या है?
- विकासवाद के द्वारा विश्व की व्याख्या कहाँ तक सही और महत्वपूर्ण है?
- भारतीय विचारधारा में सांख्य और श्री अरबिन्द ने किस रूप में विकासवाद की व्याख्या की है तथा विश्व की उत्पत्ति में विकासवाद की महत्वपूर्ण भूमिका का वर्णन किया है?
- पाश्चात्य समकालीन विचारक डार्विन, लामार्क, स्पेन्सर एवं बर्गसाँ के अनुसार विकासवाद की व्याख्या तथा विश्व विकास प्रक्रिया में विकासवाद की अहम भूमिका का वर्णन।

5. अनुसंधान का प्रारूप एवं पद्धति (Research, Design and Methodology) :—

यह शोध मुख्य रूप से भारतीय एवं पाश्चात्य मत सांख्य, श्री अरबिन्द, डार्विन, लामार्क, स्पेन्सर एवं बर्गसाँ के मूल लेखन तथा पुस्तकों पर निर्भर करता है। प्रस्तावित अनुसंधान

कार्य विश्व की विकास प्रक्रिया से संबंधित है। इसलिए इस शोध का सैद्धांतिक पक्ष के साथ–साथ व्यवहारिक पक्ष भी होगा, जिसमें हम दार्शनिक विचारों और सैद्धान्तिक विधियों का उपयोग करके, शोध कार्य का निरीक्षण करेंगे। यह विधि विश्लेषणात्मक विधि है, इसलिए इसके अंतर्गत हम पूर्व स्थापित सिद्धान्तों का विश्लेषण करेंगे और साथ ही साथ इसका संश्लेषण भी करेंगे, जिसमें विकासवाद को सत्य की कसौटी पर सूक्ष्मता से परखा जा सके और नया ज्ञान प्राप्त किया जा सके। इस शोध कार्य की पद्धति विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक होगी और आवश्यकता पड़ने पर सर्वेक्षण का कार्य भी किया जाएगा।

6. तथ्य संकलन (Source of Data) :–

प्रस्तुत शोध कार्य में तथ्य संकलन के लिए विकासवाद के आरंभिक मूल ग्रंथों एवं सहायक ग्रंथों का अध्ययन किया जाएगा। कुछ राष्ट्रीय–अन्तरर्राष्ट्रीय स्तर के पत्र एवं पत्रिकाओं जैसे दार्शनिक त्रैमासिक, दार्शनिकी, डेलनेट, नेशनल डिजिटल लाईब्रेरी, ई–कंटेंट, शोध गंगा आदि की सहायता से विषय संगत प्रमुख दार्शनिकों के विचारों का अध्ययन भी किया जाएगा।

7. तथ्य विश्लेषण (Data Analysis) :–

तथ्य विश्लेषण की प्रक्रिया के लिए शोधकर्ता द्वारा तीन प्रकार की प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाएगा।

प्रथम प्रक्रिया – विविध उद्‌गमों से तथ्यों का संकलन और मूल्यांकन किया जाएगा।

द्वितीय प्रक्रिया – सारांश, वर्गीकरण तथा अंतिम तथ्य के विश्लेषण से जिसका प्रयोग करके तथ्य को सरल और यथार्थ बनाने का प्रयास किया जाएगा।

तृतीय प्रक्रिया – तथ्य का विश्लेषण तथा उपयोगी जानकारी प्राप्त की जाएगी, जो निष्कर्ष निकालने और निर्णय लेने में सहायता प्रदान करेगा।

8. वर्तमान समय में विकासवाद की महत्ता एवं प्रासंगिकता :–

वर्तमान समय में भी विश्व की उत्पत्ति, विकास तथा इस सम्पूर्ण सृष्टि की इतने अनेक तरीके से संरचना वैज्ञानिक जगत, दार्शनिक जगत, धर्मशास्त्रियों इत्यादि के लिए कौतूहल का विषय है। चार्ल्स डार्विन के विकासवाद की परिकल्पना के पश्चात् इसके समर्थन तथा विरोध दोनों ही पक्षों में बहस चली आ रही है, फिर भी डार्विन का विकासवाद आज भी अपनी पहचान बनाये रखने में कायम है, जिसके आधार पर लोग विश्व की प्रक्रिया को जानने का प्रयास कर रहे हैं।

9. भविष्य में कार्य होने की संभावना (Future Work) :–

प्रस्तुत अनुसंधान कार्य का विषय वर्तमान ही नहीं बल्कि भविष्य में भी उपयोगी प्रमाणित होगा, क्योंकि जब तक इस विश्व का प्रलय नहीं हो जाता, तब तक यह प्रश्न रहेगा ही। दिन–प्रतिदिन हो रहे परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया, यह संभावना व्यक्त करती है कि भविष्य में इस विषय पर अनेक कार्य होंगे।

10. संभावित अध्याय (Tentative Chapters) :–

प्रथम अध्याय	विकासवाद : एक परिचय
द्वितीय अध्याय	सांख्य का विकासवाद
तृतीय अध्याय	श्री अरबिन्द का विकासवाद
चतुर्थ अध्याय	लामार्क का विकासवाद
पंचम अध्याय	डार्विन का विकासवाद
षष्ट अध्याय	स्पेन्सर का विकासवाद
सप्तम अध्याय	बर्गसाँ का विकासवाद
अष्टम अध्याय	भारतीय विचारक एवं पाश्चात्य विचारकों के विकासवाद का तुलनात्मक अध्ययन

निष्कर्ष।

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची (References)</u> :–

1. सक्सेना, डॉ० लक्ष्मी, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, तृतीय संस्करण–1991
2. सिन्हा, अजीत कुमार, समकालीन दर्शन, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ प्रकाशन, संस्करण–1985
3. तिवारी, केदारनाथ, तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पंचम संस्करण– 2017
4. प्रसाद, प्रो० राजेन्द्र, दर्शनशास्त्र की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, तृतीय संस्करण– 2018
5. निगम, डॉ० शोभा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, छठवाँ संस्करण–2019
6. चटर्जी एवं दत्त, भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस, पटना, संस्करण–2021
7. मिश्र, जगदीशचन्द्र, भारतीय दर्शन, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2012
8. दासगुप्ता, एस०एन०, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग–1, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, जयपुर–4, संस्करण–
9. सिन्हा, रमेशचन्द्र, मानक पब्लिकेशन्स प्रा०, बी–7 सरस्वती कॉम्पलेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, संस्करण–2001
10. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, पाश्चात्य दर्शन की समस्याएँ एवं समकालीन दर्शन, आशा प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–2000
11. लाल, बसंत कुमार, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, संस्करण–2016
12. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रुपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, पटना, संस्करण–2012
13. मिश्र, डॉ० हृदयनारायण, भारतीय दर्शन, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2022
14. लाल, बसन्त कुमार, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहर नगर, दिल्ली, संस्करण–2016

15. कृष्ण, ईश्वर, सांख्यकारिका।

16. Ghosh, Sri Aurobindo, The Life Divine, Lotus Press Publication, 1939.

17. Darwin Charles, The Descent of Man, John Murray, Albemarle Street Publication, 1871.

18. Lamarck, Jean-Baptiste, Philosophie Zoologique, National Museum of Natural History Publicatin, France, 1809.

19. Bergson, Henri, Creative Evolution, Dover Publications, 1907.